बिभूति बाबू का घाटशिला

विनोद साव
मुक्त नगर, दुर्ग (छ.ग.)
मो. 9311148626

अब हम किसी कस्बाई स्टेशन के प्लेटफार्म पर उतरकर चलते हैं तब लगता नहीं है कि हम घर से सैकड़ों कोस दूर किसी दूसरे प्रांतर में कहीं उतर आए हैं। किसी किस्म की कोई हड़बड़ी नहीं होती और हम मद्धिम चाप लिए हुए चुपचाप चलते रहते हैं अनजाने होकर भी अपनापन लिए हुए। लंबी दूरी तय कर लेने के बाद ट्रेन से भी अपनापा हो सा जाता है। उसे भी बिदा करते समय हमारे भीतर कुछ-कुछ होता है। लगता है उसमें बैठी बिरादरी हमसे छूटती चली जा रही है। छोटे स्टेशनों पर ट्रेनें बमुश्किल एक मिनट ही रुक पाती हैं पर जाते समय हमारे भीतर टनों, वजनों का कोई भार छोड़ जाती हैं। ऐसे ही उद्वेलन के साथ अपने ट्रालीबैग को खींचता मैं चले जा रहा था। पता नहीं चला कि कब सिर झुकाए हुए प्लेटफार्म के क्रमशः अंधेरे होते हिस्से में आ गया था जहां वह खत्म हो गया था- ''आप शायद बाहर निकलना चाहते हैं- सीढ़ी आपके पीछे की ओर हैं।'' एक आवाज आई तब दिशा बोध हुआ था।

मोबाइल पर रिंग टोन बजी, तब नाम उभर गया मंतोष मंडल का, जिसे मैंने आज शाम को ही 'सेव' किया था। सीढ़ी से उतरकर खड़ा था कि एक नौजवान ने आकर पैर छुए। उसने एक थैले को लपक कर ले लिया था और मैं ट्राली बैग खींचते हुए उसके पीछे चलता बना था। ''होटल पास ही है सर'' यह कहते हुए उसने अपनी बाइक में मुझे ले लिया था। स्टेशन के सामने बाइक जहां खड़ी थी वहां इंदिरा-राजीव की एक साथ मूर्ति थी- नीचे शिला पर लोकार्पण करने वाले तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री अजीत पांजा का नाम लिखा था।

बाइक पर पीछे बैठने से पहले मैंने एक नजर स्टेशन भवन की ओर देखा- लिखा था 'घाटशिला'। किसी हिल स्टेशन के रेलवे स्टेशन की तरह खूबसूरत और प्यारा दिख रहा था। हिल स्टेशन को अगर छोड़ दें तो यह पहली बार है जब किसी कस्बे को मैंने अपना 'डेस्टिनेशन' चुना था। अभी कुछ देर पहले ही यहां उतरा था जमशेदपुर-खड़कपुर लोकल से। कल शाम जमशेदपुर में 'व्यंग्य साहित्य' पर अपने धुआंधार व्याख्यान के कारण आज जमशेदपुर के सारे अखबारों में छाया हुआ था। बोलते हुए कई प्रोफाइल चित्र भी छपे थे। इस उत्तेजना में जमशेदपुर के एक 'ब्यूरोचीफ' सत्यम ने मुझे दलमा वन्य अभ्यारण्य घुमाने की पेशकश की थी और दिन भर 'दलमा' घुमाने का काम किया था। दलमा जमशेदपुर से पैंतालीस किलोमीटर दूर एक राष्ट्रीय अभ्यारण्य है। यह विशेषकर हाथी संरक्षण की परियोजना में लगा है। शाम तक जंगलों, आदिवासी गांवों और हाथियों को देखता रहा था। अचानक मैंने सत्यम से पूछ लिया था कि 'घाटशिला कितनी दूर है?'

वे चौंक उठे और बोले 'पास ही है, नक्सली क्षेत्र है? पर अभी थोड़े नियंत्रण में है। अगर आप जाना चाहें तो वहां के अपने पत्रकार मंतोष मंडल को बोल देता हूं। वे घुमा देंगे।' और यहां घाटशिला में मैं मंतोष मंडल की बाइक के पीछे अपना ट्राली बैग लिए बैठा था। होटल मत्स्य गंधा था यानी मछली की बिसरइन गंध थी। मंतोष ने बताया कि 'यह घाटशिला है तो झारखंड में पर बंगाली बहुल है' और होटल की हवा यह प्रमाणित कर रही थी।

'यहां बंगाली आते भी बहुत हैं कलकत्ता से मौसम चेंज के लिए' रिसेप्शनिस्ट ने यहां कमरे की चाबी देते हुए कहा था। होटल कलकत्ता में चलने वाले पुराने मेस की तरह का था। इसका ज्यादा हिस्सा लकड़ियों से बना था। जिसका जिक्र भी बिभूति बाबू की बांग्ला कथाओं में देखने में आता है। तब कलकत्ता में नौकरी चाकरी करने वाले और आगे पढ़ाई जारी रखने वाले लोग इन मेसों में रहा करते थे। यहां पारस्परिकता और सामूहिकता की भावना पनपती थी।

जब-जब भी बंगाल या कलकत्ता जाना हुआ तब जमशेदपुर के बाद यह स्टेशन पड़ा करता था 'घाटशिला' अमूमन दुर्ग से हावड़ा जाने वाली ट्रेनें घाटशिला में नहीं रुकतीं